THE TIMES OF INDIA

Date:22-09-22

A Great Show

SC allowing live-streaming of constitution bench hearings is a milestone in democratic journey.

TOI Editorials

Imagine – India's Supreme Court repeals the sedition law, making history, and you are watching it as it's happening, although you are neither a lawyer nor a court official or even a regular court attendee, and you are not even in Delhi or, indeed, in India. That's entirely possible, thanks to SC's decision that constitution bench hearings will be live-streamed. It is without a doubt a milestone in India's democratic journey. If citizens can witness SC hearings that address the great questions posed by a voluble democracy, brutally competitive politics and social churn, two positives impacts are likely: more interest in crucial matters that define India's governance and greater accountability for SC judges and big name lawyers, who typically are the ones that engage in legal jousts before apex court constitution benches.

This should have happened before. In 2018, SC had allowed livestreaming. But nothing happened until the pandemic intervened. SC and high courts had no option but commence virtual hearings. Then last year, SC released model rules for live-streaming court proceedings. Subsequently, Orissa, Gujarat, Karnataka and some other HCs have beamed court proceedings, to great effect. Equally important, for litigants unable to attend court, lives treaming is a great enabler. With videoconferencing apps allowing almost glitch-free live-streaming, subordinate courts should also be asked to step into the 21st century, operating in hybrid mode. This will spare witnesses and litigants from personal appearances and minimise adjournments.

Ex-CJI NV Ramana had termed live-streaming a "double-edged sword" – the argument being that it makes judges potentially a more frequent target of public ire, or rather a target of social media trolls. Publicity-savvy lawyers will probably deploy histrionics even more than they do now. Some mischievously edited footage of SC proceedings may also appear. But all of this together doesn't form an argument against live-streaming. Top courts globally, for example, the International Criminal Court, the UK Supreme Court, have long allowed live-streaming. The popularity of Karnataka HC's hijab ban hearings suggests that SC's constitution bench hearings will have, to borrow a term from the TV industry, high TRPs. That's good news for India.

THE ECONOMIC TIMES

Date:22-09-22

Taking Care of Bank Hygiene Issues

ET Editorials

The Financial Services Institutions Bureau (FSIB) will reportedly play a critical role in the governance of public sector banks (PSBs) by not just identifying bank directors but also training them. This is fine. But despite the efforts by regulators and policymakers, corporate governance remains a tick-the-box exercise. That must change. Global economic uncertainty has accentuated financial sector risks, underscoring the need for regulators to mitigate vulnerabilities through timely action, and also for independent directors to step up oversight, secure risk management and deterrence of fraud. Fit and proper criteria for membership on bank boards and sound methods for selection of board members — domain experts — count. Independent directors must be willing to rock the boat in the pursuit of management accountability to shareholders.

Systemic reform is also needed. GoI says it has ended political interference in banking operations. That is the first step. Marketbased salaries for senior bankers akin to those in the private sector must follow to help attract the best talent and disincentivise any underhand ways of bankers enriching themselves. PSB boards can appoint chief risk officers with market-determined compensation, which must be extended to senior bankers. A tiered compensation structure with a decent upfront part, and larger components tied to the banks' long-term performance, subject to clawback, will foster the culture to maximise returns in the long run.

The Basel Committee on Banking Supervision held it is corporate governance at a bank that defines its integrity, operational excellence and compliance with supervision. But scams have proliferated as supervision lags the technology. That needs to change, too.

दैनिक भास्कर

Date:22-09-22

भिक्षाम देहि 2900 करोड़ का 'उद्योग' बन गया है !

संपादकीय

देश में भिखारी किसान से ज्यादा कमाता है! सरकारी आकलन के अनुसार भारत में करीब 4.17 लाख भिखारी हैं। एक विश्वविद्यालय और एक स्वयंसेवी संस्था के संयुक्त ताजा अध्ययन के अनुसार देश में लोग भिखारियों को हर साल

करीब 2900 करोड़ रुपए भीख के रूप में देते हैं। यानी एक भिखारी की औसत आमदनी 4800 रुपए। कुछ माह पहले एनएसएसओ की रिपोर्ट ने बताया कि एक औसत किसान परिवार की कुल आय 10,218 रु. प्रतिमाह है, जिसमें खेती से 3798 रुपए मिलते हैं, बाकी आय मजदूरी/ पगार, पशुपालन, गैर कृषि व्यवसाय और जमीन किराए से होती है। इस साल सरकार ने भीख मांगने के खिलाफ एक कानून बनाने की पहल की है। संयुक्त अध्ययन में पाया गया कि मध्यम वर्ग भीख देना ज्यादा पसंद करता है, बजाय किसी समाजसेवी संस्था को लोकहित में दान करने के। दानदाता 70% धार्मिक संस्थाओं या मंदिरों को दान देने में विश्वास रखते हैं और 12% भिखारियों को देने में। गैर धार्मिक संस्थाओं को केवल पांच प्रतिशत दान मिलता है। हर वर्ष इन तमाम मदों में करीब 23.70 हजार करोड़ रुपए दान दिए जाते हैं। जन-कल्याण में लगी स्वयंसेवी संस्थाओं का सीधे धार्मिक आस्थाओं से ना जुड़ा होना शायद आम दानकर्ता को उदासीन बनाता है।

Date:22-09-22

विदेशी नाम को छूट रहे हैं, विदेशी ज्ञान कब छूटेगा ?

अभय कुमार दुबे, (अम्बेडकर विवि, दिल्ली में प्रोफेसर)

दिल्ली के राजपथ को अब कर्तव्यपथ कहा जाएगा। जिसे कभी कनॉट प्लेस कहा जाता था, वह कई साल पहले ही राजीव चौक हो चुका है। जो राउज़ एवेन्यू था, वह दीनदयाल उपाध्याय मार्ग बना है। इरविन अस्पताल अब जयप्रकाश नारायण चिकित्सालय है और विलिंगडन अस्पताल को हम राममनोहर लोहिया अस्पताल के नाम से जानते हैं। इंडिया गेट से जार्ज पंचम की प्रतिमा पहले ही हटाई जा चुकी है। मुम्बई के विक्टोरिया टर्मिनस के नाम का भी स्वदेशीकरण हो गया है। तो क्या यह मान लिया जाए कि गुलामी के प्रतीकों से छुटकारा पाने का तरीका हमें पता लग गया है? अगर ऐसा है तो सरकार को एक ही बार में देश के जितने भी अंग्रेजी या युरोपियन नामों वाले स्थान, स्मारक, मार्ग या बाजार हैं, उनकी सूची बनवा लेनी चाहिए। उनका भारतीय नामकरण करने से एक ही तोर चलाकर उपनिवेशीकरण की यादों को समाप्त किया जा सकता है। चाहें तो सेंट्रल विस्टा का भी नाम बदलकर कोई संस्कृतनिष्ठ नाम कर दें।

सवाल यह है कि अगर नाम बदलने की प्रक्रिया पूर्ण हो गई तो क्या इससे देश-समाज-दुनिया को देखने का हमारा नजरिया बदल जाएगा? क्या नामों को बदलने से गारंटी हो सकती है कि जब हम आजाद भारत के राज्यशास्त्र के बारे में चिंतन करेंगे तो हमारा नजरिया हॉब्स, लॉक और मिल के विचारों पर निर्भरता के बजाय कौटिल्य के अर्थशास्त्र या भीष्म के उपदेश पर भी निर्भर होगा? क्या उस सूरत में न्यायशास्त्र की बात करते समय हम जॉन रॉल्स की सैद्धांतिकी के मोहताज नहीं होंगे? साहित्यिक सिद्धांत के लिए जेमसन, ईगलटन और लुकाच की शरण में जाने के बजाय अभिनवगुप्त और आनंदवर्धन के विमर्श को खंगालेंगे? सार्वजनिक जीवन पर चर्चा करते समय हमारे पास हैबरमास की पब्लिक स्फीयर थियरी के अलावा भी कुछ होगा?

भाषाओं की संरचना पर विचार करने के लिए सस्यूर की मदद लेंगे या भर्तृहरि की? और तो और, जब नामों को बदलने की कवायद पूरी हो चुकेगी तो क्या एक ज्ञानपूर्ण शोधपरक निबंध लिखने के लिए हमारे पास पश्चिमी विद्वानों और अंग्रेजी में रचे जाने वाले समाज-विज्ञान द्वारा थमाए गए निबंध के ढांचे के अलावा भी कोई ढांचा होगा? इन सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं। दरअसल, भारत ने वास्तविक स्वदेशीकरण की तरफ पहला कदम भी नहीं उठाया है। असली

स्वदेशीकरण तो तब होता है जब भाषा, ज्ञान और शिक्षा का स्वदेशीकरण किया जाता है। दिक्कत यह है कि यह कामन एक झटके में किया जा सकता है, और न ही इसके साथ शिलान्यास या मूर्ति-अनावरण के कार्यक्रम जुड़े हो सकते है। अगर आजादी के तुरंत बाद स्वदेशीकरण का कार्यक्रम लिया जाता तो कम से कम पच्चीस साल लम्बा ब्लूप्रिंट बनाना पड़ता। राष्ट्र-निर्माण करने वालों की पूरी पीढ़ी इसमें खप जाती। जो प्रधानमंत्री इस काम को शुरू करता, हो सकता है उसके जीवन में यह काम पूरा नहीं हो पाता। चूंकि ऐसा न तब किया गया और न अब किया जा रहा है, इसलिए दर्जा छह की नागरिकशास्त्र या सिविक्स की किताब से लेकर राजनीतिशास्त्र की एमए तक की किताबों में पश्चिमी विद्वानों द्वारा रचा ज्ञान भरा हुआ है।

इससे फर्क नहीं पड़ता कि केंद्र या राज्यों में किस पार्टी और विचारधारा की सरकार है- औपनिवेशिक महप्रभुओं द्वारा रचे गए ज्ञान को आज तक किसी सरकार ने चुनौती देने की जुर्रत नहीं की है। हम ज्ञान के इन्हीं विदेशी रूपों में अपने समाज, संस्कृति और इतिहास का अध्ययन करने के लिए मजबूर हैं। विडम्बना यह है कि इस ज्ञान को हम गुलामी का प्रतीक नहीं मानते। हमारे बुद्धिजीवियों ने इस ज्ञान के अध्ययन से पैदा होने वाली दुविधाओं से बचने के लिए एक खास युक्ति विकसित कर ली है। वे उपनिवेशवादियों द्वारा किए जाने वाले आर्थिक शोषण और राजनीतिक सम्प्रभुता के हरण को अलग श्रेणी में रखते हैं और उपनिवेशवाद का समर्थन करने वाले विमर्शकारों द्वारा उत्पादित ज्ञान को दूसरी श्रेणी में रखते हैं।

नई शिक्षा नीति के दस्तावेज को पढ़ने पर आभास होता है कि शायद शिक्षा संबंधी नीति-निर्माताओं को इस जिम्मेदारी का कुछ-कुछ अहसास है। लेकिन यह दायित्व दस्तावेज में जिक्र कर देने भर से तो पूरा नहीं हो सकता। यह तो तभी होगा जब पश्चिमी सामाजिक सिद्धांत के अध्ययन को स्थगित कर ज्ञान की भारतीय परम्पराओं का पालन किया जाए। पश्चिमी ज्ञान की लिखाई-पढ़ाई तो हमारे बुद्धिजीवी ढाई सौ साल से कर ही रहे हैं।

दैनिक जागरण

Date:22-09-22

ड्रग्स तस्करी का सिलसिला

संपादकीय

दिल्ली पुलिस की ओर से मुंबई के बंदरगाह में एक कंटेनर से बड़ी मात्रा में नशीले पदार्थ की बरामदगी यही बताती है कि देश में किस तरह विभिन्न रास्तों से बड़े पैमाने पर ड्रग्स भेजी जा रही है। इसके पहले गुजरात के बंदरगाह और पंजाब के साथ पूर्वोत्तर राज्यों के सीमांत इलाकों से भी हजारों करोड़ रुपये के मादक पदार्थों की खेप पकड़ी जा चुकी है। इस तरह की खेप पकड़े जाने का सिलसिला जिस तरह खत्म होने का नाम नहीं ले रहा है, उससे न केवल यह स्पष्ट होता है कि भारत अंतरराष्ट्रीय ड्रग्स तस्करों के निशाने पर है, बल्कि यह भी कि उन्होंने देश के विभिन्न हिस्सों में अपने एजेंट बना लिए हैं। यह ठीक है कि बाहर से आ रही नशीले पदार्थों की खेप लगातार पकड़ी जा रही है, लेकिन प्रश्न यह है कि क्या सारी खेप को देश में आने से रोका जा पा रहा है? आशंका यही है कि ड्रग्स तस्कर और उनके एजेंट पुलिस और नारकोटिक्स विभाग को चकमा देकर नशीले पदार्थों की अच्छी-खासी मात्रा देश के विभिन्न हिस्सों में खपा रहे होंगे। जब-तब इसके प्रमाण भी मिलते रहते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी किसी से छिपा नहीं कि किस तरह देश के विभिन्न शहरों में ड्रग्स पार्टियां होने लगी हैं।

चिंता की बात केवल यह नहीं कि ड्रग्स तस्करी के पीछे उन तत्वों का हाथ दिख रहा है, जो आतंकवाद अथवा अन्य गंभीर अपराधों में लिप्त हैं, बल्कि यह भी है कि युवाओं तक ड्रग्स पहुंचाने का एक नेटवर्क बन गया है। जितना जरूरी इस नेटवर्क को ध्वस्त करना है, उतना ही उन तत्वों पर लगाम लगाना, जो विभिन्न रास्तों और माध्यमों से देश में ड्रग्स भेजने में लगे हुए हैं। यह आसान नहीं, क्योंकि यह काम अफगानिस्तान, पाकिस्तान, ईरान आदि देशों में सक्रिय ड्रग्स के वे बड़े तस्कर कर रहे हैं, जो भारत विरोधी तत्वों से मिले हुए हैं। ड्रग्स तस्कर जिस तरह नित-नए तरीकों से नशीले पदार्थों की खेप भारत ला रहे हैं, उससे नारकोटिक्स विभाग के साथ पुलिस और अन्य एजेंसियों को और अधिक सतर्क रहने की जरूरत है। इसके साथ ही समाज को भी सावधान रहना होगा, क्योंकि ड्रग्स तस्करी का एक उद्देश्य देश की युवा पीढ़ी को खोखला करना और उसके भविष्य को अंधकार में धकेलना भी है। इसकी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए कि पंजाब और पूर्वोत्तर के कुछ राज्यों में ड्रग्स के चलन ने युवा पीढ़ी को किस तरह तबाह किया। यदि देश को ड्रग्स तस्करों की सक्रियता से बचाना है तो नशीले पदार्थों के सेवन के विरुद्ध अलख जगानी होगी। इसमें सफलता तभी मिलेगी, जब युवा पीढ़ी मादक पदार्थों के विनाशकारी प्रभाव को लेकर सचेत होगी। वह ड्रग्स के खतरे को लेकर सचेत हो, इसके लिए समाज के अन्य लोगों को भी अपने-अपने स्तर पर सक्रिय होना होगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:22-09-22

क्षेत्रीय व्यापार समूह पर अलग-अलग विचार

श्रीनिवास-राघवन

एक विचारधारा ऐसी भी है कि भारत व्यापार के खिलाफ है। यह धारणा इसलिए बनी कि भारत लगातार चीन की आरसेप और अब अमेरिका की आईपीईएफ जैसी क्षेत्रीय व्यापारिक व्यवस्थाओं में शामिल होने का अनिच्छुक बना रहा या इससे इनकार करता रहा। भारत विश्व व्यापार संगठन का भी एक अनिच्छुक समर्थक रहा है। कुल मिलाकर उसने हमेशा द्विपक्षीय समझौतों को तरजीह दी है। कई अर्थशास्त्री और राजनयिक सोचते हैं कि व्यापार को लेकर यह रुख सही नहीं है। वहीं ऐसा सोचने वाले भी हैं कि यह सही रवैया है।

इस 35 वर्ष पुरानी बहस में एक बड़ी दिक्कत यह है कि इसमें अच्छे और बुरे का आकलन करने के कोई विशिष्ट मानक नहीं हैं। दूसरी समस्या यह रही है कि सरकार हमेशा बौद्धिक संबद्धता की शर्तें तय करती है, भले ही उसके पास ऐसा करने की पूरी तैयारी न हो। इसका परिणाम उन लोगों के बीच ध्रुवीकरण के रूप में सामने आता है जो या तो आजीविका के संदर्भ में दलील देते हैं (सरकार) तथा वे जो आर्थिक क्षमता और तकनीक हस्तांतरण के संदर्भ में दलील देते हैं। इससे एक स्वाभाविक समस्या उत्पन्न होती है- दोनों पक्ष अपनी-अपनी जगह सही हैं। ऐसे में अंतत: बात केवल संतुलन की रह जाती है। लेकिन प्रश्न यह है कि आप संतुलन कैसे कायम करेंगे जब आप पहले उपरोक्त मानक पर सहमत नहीं हुए?

विजेताओं और पराजित होने वालों के बारे में भी स्पष्ट तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता है। सरकार नहीं चाहती कि कोई पराजित हो या पीछे रहे। यह बात राजनीतिक रूप से वांछित हो सकती है लेकिन व्यावहारिक स्तर पर यह असंभव है। दूसरा पक्ष कहता है कि बाजार को तय करने दीजिए, भले ही पूरी अर्थव्यवस्था प्रभावित हो। इससे लगने वाले झटके और उसके परिणामस्वरूप आने वाले सुदृढ़ीकरण से पूरे देश को लाभ ही होगा।

दूसरे शब्दों में कहें तो ऐसा कोई बिंदु नहीं हैं जहां आगामी चुनावों की बाट जोह रही अर्थव्यवस्था और अगले दशक के बारे में विचार कर रही अर्थव्यवस्था का मेल हो।

पहली बात जो स्वीकार करनी होगी वह यह कि हमारी अर्थव्यवस्था बहुत बड़ी नहीं है। विश्व अर्थव्यवस्था के समक्ष हमारी वही स्थिति है जो भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष अन्य छोटे देशों की है यानी महत्त्वहीन। हम कारोबारी समूहों के साथ तभी समझदारीपूर्वक संपर्क कर सकेंगे जब हम स्वीकार कर लें कि वास्तव में हम एक छोटी सी अर्थव्यवस्था हैं। एक कमी यह है कि हमारे पास मोलतोल की कोई क्षमता नहीं है और अमेरिका तथा चीन जैसी किसी भी बड़ी अर्थव्यवस्था के नेतृत्व वाली व्यवस्था में हम हमेशा नुकसान में रहेंगे। हमें उनके शासन में रहना होगा। ऐसे में बाहर रहना समझदारी भरा फैसला माना जा सकता है।

जब हम किसी खेमे में नहीं होते तो हमारा आकार काफी बड़ा प्रतीत होता है लेकिन जैसे ही हम किसी खेमे या कारोबारी समूह में आते हैं तो न केवल आर्थिक रूप से हमारा आकार छोटा हो जाता है बल्कि समूह के भीतर समर्थकों की तादाद की दृष्टि से भी हमारा आकार छोटा दिखता है।

उस लिहाज से देखा जाए तो आजीविका की दलील को राजनेता दरकिनार कर सकते हैं क्योंकि वे तात्कालिक राजनीतिक समस्याओं को अधिक तरजीह देते हैं, बजाय कि मध्यम अवधि के आर्थिक नतीजों के।

संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार ने दोहा दौर की वार्ता में कृषि को लेकर आजीविका की दलील दी। हकीकत में इस बात का कोई आधार नहीं था लेकिन कोई राजनीतिक दल किसान विरोधी होने का ठप्पा लगवाना नहीं चाहेगी। यह एक

ऐसी हकीकत है जो अमेरिका पर लागू नहीं होती है। वहां किसान आबादी का केवल 1.5 फीसदी हैं और चीन की बात करें तो वह निजी स्तर पर व्यक्तियों की बहुत अधिक परवाह नहीं करता।

तीन दशकों तक इन व्यापारिक नीतियों संबंधी बहसों पर नजर रखने के बाद मैं यह प्रस्ताव रखना चाहूंगा कि हमें वि शिष्ट संतुलन पर अधिक ध्यान देना चाहिए और सामान्य मान्यताओं पर कम।

पहली बात, विश्व व्यापार संगठन में चीन के साथ दुनिया का जो अनुभव रहा है उससे पता चलता है कि आपको केवल अपनी नीतियों में ही बदलाव नहीं करना होता है बल्कि आपको हमेशा इस बात के लिए भी तैयार रहना होगा चीन क्या करता है।

दूसरी बात, हमेशा ऐसी निर्यात और विनिमय दर नीतियां अपनाएं जिनके बारे में अनुमान लगाया जा सकता हो। एक बेहतरीन अर्थशास्त्री रहे दिवंगत राहुल खुल्लर भी अक्सर इसी बात का उल्लेख किया करते थे। बतौर वाणिज्य सचिव उन्होंने अनुमान न लगा पाने की अनिश्चितता को बहुत करीब से देखा था।

तीसरी बात, उन अर्थशास्त्रियों और राजनयिकों की बात नहीं सुनें जो पूरी प्रक्रिया में शामिल न हों और जिनका उसमें कुछ दांव पर न लगा हो। इसके बजाय केवल व्यापार नीति से जुड़े वकीलों और किसानों तथा कारोबारी लोगों की बात सुनें। यदि इन लोगों की सहमति मिले तभी किसी व्यापार ब्लॉक का हिस्सा बनें, उसमें शामिल हों। अगर वे इससे इनकार करें तो दूरी बनाए रखें।

जनसत्ता

Date:22-09-22

खेल और खिलवाड़

संपादकीय

युवाओं में खेल-कूद को बढ़ावा देने के लिए सरकारें अनेक योजनाएं चलाती हैं। मकसद है कि क्षेत्रीय स्तर पर खेल प्रतियोगताओं के माध्यम से श्रेष्ठ प्रतिभाओं की पहचान और उन्हें राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर खेलने का मौका उपलब्ध कराया जाए। इसके लिए हर जिले में खेल अधिकारी नियुक्त हैं, जो खिलाड़ियों के कौशल को निखारने की जिम्मेदारी निभाते हैं। मगर हमारे देश में सरकारी योजनाएं किस तरह भ्रष्टाचार और कदाचार का शिकार हो जाती हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। खेलों को प्रोत्साहन देने के लिए चलाई जा रही योजनाएं भी इससे अछूती नहीं हैं। इसका ताजा उदाहरण उत्तर प्रदेश के सहारनपुर में आयोजित एक खेल प्रतियोगिता के दौरान खिलाड़ियों के लिए तैयार भोजन को शौचालय में रखने की घटना है। जब उस घटना का वीडियो बड़े पैमाने पर प्रसारित हो गया, तब प्रशासन की नींद खुली और खुद जिलाधिकारी ने घटना की जांच कर रिपोर्ट सौंपी। सरकार ने तत्काल संबंधित अधिकारी को निलंबित और भोजन की व्यवस्था संभालने वाले ठेकेदार को काली सूची में डाल दिया। अब उत्तर प्रदेश सरकार ने सारे जिला खेल

अधिकारियों को निर्देश दिया है कि खिलाड़ियों की सुविधाओं के मामले में किसी भी तरह की लापरवाही नहीं होनी चाहिए। मगर इस घटना और सरकार की सख्ती से दूसरे जिला खेल अधिकारियों ने कितना सबक सीखा होगा, कहना मुश्किल है।

खेल के नाम पर खेल संघों, स्टेडियमों, खेल प्रशिक्षण केंद्रों आदि में खिलाड़ियों की सुविधाओं का कितना ध्यान रखा जाता है, इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि समय-समय पर भोजन की गुणवत्ता, मात्रा, खिलाड़ियों के साथ प्रशिक्षकों के बर्ताव आदि को लेकर शिकायतें आम हैं। दरअसल, ज्यादातर जगहों पर खिलाड़ियों को भोजन उपलब्ध कराने का काम ठेकेदारों के माध्यम से किया जाता है। खासकर जब खेल प्रतियोगिताएं आयोजित होती हैं, तो भोजन की व्यवस्था ठेकेदार ही करते हैं। यह छिपी बात नहीं है कि ठेका देने में किस तरह कमीशनखोरी शामिल होती है। जाहिर है, इस तरह ठेकेदार भोजन की गुणवत्ता गिरा कर अपनी कमाई बढ़ाने का प्रयास करते हैं। घटिया आहार उपलब्ध कराते हैं। कम से कम कारीगरों से काम चलाना चाहते हैं। सहारनपुर वाले मामले में भी यही हुआ। तीन सौ खिलाड़ियों के लिए भोजन तैयार करने को मात्र दो कारीगर रखे गए थे। हद तो यह कि तैयार भोजन शौचालय में रखवाया गया, जहां से लेकर खिलाड़ियों को खाना था। अंदाजा लगाया जा सकता है कि जब भोजन रखने में साफ-सफाई का ध्यान नहीं रखा जाता, तो उसे तैयार करने में कितना ध्यान दिया जाता होगा।

सहारनपुर की घटना से एक बार फिर यह उजागर हुआ है कि खेलों को प्रोत्साहन देने की जिम्मेदारी निभाने वाले खुद किस तरह का खेल करते हैं और उनके मन में खिलाड़ियों के प्रति कितना सम्मान है। जब वे खिलाड़ियों को ठीक से भोजन नहीं करा सकते, उनके खानपान में साफ-सफाई का ध्यान नहीं रख सकते, तो भला उनके मन में खिलाड़ियों को राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुंचाने का संकल्प कितना दृढ़ होगा। ऐसा नहीं माना जा सकता कि खेल अधिकारियों को इस बात की जानकारी नहीं होगी कि खिलाड़ियों के जीवन में आहार की क्या अहमियत होती है, खराब गुणवत्ता और दूषित भोजन से उनकी सेहत पर क्या असर पड़ सकता है। मगर उन्हें योजना के पैसे में हेराफेरी और खिलाड़ियों के प्रति उपेक्षा का भाव इस तकाजे पर कभी गंभीरता से सोचने का अवसर ही नहीं देता। खिलाड़ियों की सेहत और प्रतिभा के साथ खिलवाड़ करने वाले अधिकारियों पर सख्त नजर बहुत जरूरी है।

Date:22-09-22

कृषि क्षेत्र की बढ़ती चुनौतियां

जयंतीलाल भंडारी

इस बार पूरे देश में बारिश सामान्य से छह फीसद अधिक रही है, लेकिन उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, ओड़ीशा, पश्चिम बंगाल, पंजाब और मणिपुर में सामान्य से कम बरसात होने के कारण परेशानियां खड़ी हो गई हैं। इन प्रदेशों में खरीफ की खेती प्रभावित हुई है और खासकर धान उत्पादन के लक्ष्य के साथ-साथ आगामी रबी फसलों के उत्पादन संबंधी चिंताएं दिखाई दे रही हैं। गौरतलब है कि खरीफ सीजन की बुआई अंतिम दौर पर पहुंचने के बावजूद फसलों का कुल रकबा पिछले साल की अपेक्षा थोड़ा कम है। हाल ही में कृषि मंत्रालय और किसान कल्याण विभाग द्वारा जारी आंकड़ों के मुताबिक दो सितंबर तक देश में खरीफ फसलों का कुल रकबा 1.6 फीसद घट कर 1045.14 लाख हेक्टेयर रह गया है, जबकि पिछले साल इस समय तक देश में 1061.92 लाख हेक्टेयर में फसलों की बुआई हुई थी।

उल्लेखनीय है कि धान उत्पादक राज्यों में बारिश कम होने के कारण चालू खरीफ सत्र में अब तक धान फसल का रकबा 5.62 प्रतिशत घट कर 383.99 लाख हेक्टेयर रह गया है। पिछले साल धान की बुआई 406.89 लाख हेक्टेयर में की गई थी। धान मुख्य खरीफ फसल है और इसकी बुआई जून से दक्षिण-पश्चिम मानसून की शुरुआत के साथ शुरू होती है और अक्तूबर से कटाई की जाती है। लेकिन धान की फसल के विपरीत कपास की बुआई में जोरदार बढ़ोतरी हुई है। अगस्त के अंत तक देश भर में कपास का रकबा 6.81 फीसद बढ़ कर 125.69 लाख हेक्टेयर पहुंच गया, जो पिछले साल समान अविध में 117.68 लाख हेक्टेयर था। धान के अलावा चालू खरीफ सत्र में अगस्त के अंत तक 129.55 लाख हेक्टेयर के साथ दलहन की बुआई में मामूली गिरावट आई है।

गौरतलब है कि 2022 में असमान मानसून और मानसून की बेरुखी ने आगामी रबी सीजन की फसलों के लिए भी गंभीर चुनौती पैदा कर दी है। मिट्टी में नमी की कमी देश के पूर्वी राज्यों में रबी की खेती और जलवायु परिदृश्य को बुरी तरह प्रभावित कर सकती है। ऐसे में मूडीज इनवेस्टर सर्विस (मूडीज) ने देश में बढ़ती ब्याज दरों और असमान मानसून के कारण भारत के आर्थिक विकास के अनुमान को घटा दिया है। इससे पहले मूडीज ने मई 2022 में भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में 8.8 फीसद वृद्धि का अनुमान लगाया था, जिसे अब घटा कर 7.7 फीसद कर दिया है।

निश्चित रूप से इस बार देश की कृषि के सामने जो गंभीर चुनौतियां पैदा हो गई हैं, उनसे निपटने के लिए शीघ्र रणनीति बनाना जरूरी है। सरकार जलवायु परिवर्तन से कृषि की चुनौतियों से निपटने के लिए आगे बढ़ते हुए दिखाई दे रही है। 7 सितंबर को रबी अभियान- 2022 पर राष्ट्रीय कृषि सम्मेलन में केंद्रीय कृषिमंत्री ने देश में जलवायु परिवर्तन की वर्तमान और भावी परिस्थितियों का विश्लेषण कर आगे की कार्ययोजना बनाने और प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने पर जोर दिया। प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए सरकार की तरफ से सबसिडी दी जा रही है। कई प्रदेशों में ऐसे स्थान हैं, जहां कभी कीटनाशक और यूरिया का इस्तेमाल ही नहीं किया गया है। वहां सिर्फ बारिश आधारित खेती होती है। ऐसे ब्लाक, स्थान या जिलों को चिह्नित किया जा रहा है, जिसका लाभ यह होगा कि आर्गेनिक फसल सर्टिफिकेट के लिए भूमि की तीन साल तक परीक्षण नहीं करना पड़ेगा और आर्गेनिक खेती के रकबे को बढ़ाया जा सकेगा। उन्होंने कहा कि यह जलवायु परिवर्तन का दौर है। जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों पर विचार करके केंद्र और राज्य कैसे आगे बढ़ सकते हैं, इसका विश्लेषण कर खुद को तैयार करने की जरूरत है।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि 8 सितंबर को सहकारिता मंत्रियों के राष्ट्रीय सम्मेलन में केंद्रीय गृह और सहकारिता मंत्री ने कहा कि मल्टी स्टेट कोआपरेटिव से जहां प्राकृतिक खेती को प्रोत्साहित किया जाएगा, वहीं कृषि क्षेत्र में प्राथमिक कृषि ऋण सहकारी समितियों (पेक्स) को मजबूत बनाकर छोटे किसानों की ऋण संबंधी चुनौतियों के समाधान से किसानों की आय में वृद्धि की जा सकेगी। निश्चित रूप से असमान मानसून ने कृषि क्षेत्र के तेजी से बढ़ते रिकार्ड ग्राफ के सामने चुनौती खड़ी कर दी है। यद्यपि इस समय भारत में 8.33 करोड़ टन खाद्यान्न (गेहूं और चावल) का अतिरिक्त भंडार है। लेकिन नई कृषि चुनौतियों के बीच जहां एक ओर गेहूं उत्पादन के अधिक प्रयास करने होंगे, वहीं दूसरी ओर धान उत्पादन के लिए भी रणनीतिक कदम जरूरी होंगे। देश की कृषि के सामने जो गंभीर चुनौतियां निर्मित हो गई हैं, उनसे निपटने के लिए सरकार द्वारा शीघ्रतापूर्वक रणनीतिक तैयारी जरूरी है।

निश्चित रूप से इस समय सरकार ने छोटी जोत की चुनौती से निपटने के लिए सामूहिक खेती के विचार को लागू किए जाने के साथ-साथ कम लागत वाली खेती को प्रोत्साहित करते हुए प्राकृतिक और जैविक खेती को आगे बढ़ाने का जो अभियान चलाया है, उसे और कारगर तरीके से आगे बढ़ाना होगा। यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि देश में दलहन और

तिलहन की उन्नत खेती में 'लैब टू लैंड स्कीम' के प्रयोग और वैज्ञानिकों की सहभागिता के साथ नीतिगत समर्थन की नीति से तिलहन मिशन को तेजी से आगे बढ़ाना होगा। इस समय देश भर में उन्नत प्रजाति के बीजों की आपूर्ति के लिए केंद्र सरकार दलहनों और तिलहनों के किसानों को मुफ्त मिनी किट बांट रही है। इसके लिए जलवायु आधारित चिह्नित गांवों को दलहन गांव घोषित किया गया है, जहां अनुसंधान केंद्रों के विज्ञानियों की देखरेख में दलहनी और तिलहनी फसलों की खेती की जा रही है। ऐसे प्रयासों को कारगर बनाना होगा।

इस समय डिजिटल एग्रीकल्चर पर केंद्र सरकार ने जिस तरह काम शुरू किया है, उसे रफ्तार देना होगा। इससे किसानों तक सरकार की और किसानों की सरकार तक पहुंच बनेगी और उन्हें योजनाओं का लाभ मिलेगा। चूंकि वर्ष 2023 को अंतरराष्ट्रीय पोषक-अनाज वर्ष के रूप में मनाया जाएगा, भारत पूरी दुनिया में इस कार्यक्रम का नेतृत्व करने वाला है। ऐसे में सरकार की कोशिश हो कि मोटे अनाज का उत्पादन और निर्यात बढ़े तथा किसानों की आमदनी बढ़े।

निश्चित रूप से देश में जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के बीच भारत को कृषि में लगातार आगे बढ़ने के लिए अभी खाद्यान्न के अलावा अन्य सभी खाद्य उत्पादनों में आत्मनिर्भरता के लिए मीलों चलना पड़ेगा। खाद्य तेलों का उत्पादन बÞढ़ाने के लिए सरकार ने ग्यारह हजार करोड़ रुपए की लागत से जिस महत्त्वाकांक्षी तिलहन मिशन की शुरुआत की है, उसे पूर्णतया सफल बनाने की जरूरत है। तिलहन फसलों का रकबा बढ़ाने के साथ उत्पादकता बढ़ाने हेतु विशेष जोर उन्नत प्रजाति के हाइब्रिड बीजों पर दिया जाना होगा। कृषि के डिजिटलीकरण को प्राथमिकता से बढ़ाना होगा।

उम्मीद है कि सरकार वर्ष 2022 में असमान मानसून की चुनौतियों के मद्देनजर विभिन्न कृषि विकास कार्यक्रमों और खाद्यान्न, तिलहन और दलहन उत्पादन बढ़ाने के लिए लागू की गई नई योजनाओं के साथ-साथ डिजिटल कृषि मिशन के कारगर क्रियान्वयन की डगर पर तेजी से आगे बढ़ेगी। सरकार कृषि, पशुपालन और खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में आधुनिकीकरण और कृषि क्षेत्र में फसलों के विविधीकरण की डगर पर तेजी से आगे बढ़ेगी। इस समय असमान मानसून और मानसून की बेरुखी के कारण देश के कृषि मानचित्र पर जो चुनौतियां उभर रही हैं, उसमें बहुत कुछ सुधार हो सकेगा और भारतीय कृषि अपनी रफ्तार को बनाए रख सकेगी। भारत दुनिया भर में खाद्यान्न की आपूर्ति करने वाले प्रमुख देश के रूप में भी अपनी सार्थक और मानवीय भूमिका निभाते हुए दिखाई देगा।

राष्ट्रीय सहारा

Date:22-09-22

भारी न पड़ जाए उपेक्षा !

भारत डोगरा

हाल के अध्ययनों से ऐसे चिंतित करने वाले परिणाम सामने आ रहे हैं कि दैनिक जीवन में ऐसे बहुत से उत्पादों का प्रसार तेजी से बढ़ा है, जिनसे अधिक संपर्क में आने से कैंसर की संभावना बढ़ सकती है। लेकिन सावधानी इसी में है कि

जिन उत्पादों के बारे में गंभीर खतरों की काफी जानकारी मिल रही हैं, उनसे परहेज रखा जाए। उनका प्रसार तो नही किया जाए।

एक समय सीएफसी या उससे मिलतेजुलते रसायनों को रेफ्रीजेशन उद्योग और कुछ अन्य उद्योगों के लिए बड़ी देन माना गया था। इस कारण इनका प्रसार बहुत तेजी से किया गया। यह तो बाद में पता चला कि इससे ओजोन परत को कितना नुकसान हो रहा था। मानव जीवन (या अन्य तरह का जीवन) कितना संकटग्रस्त हो रहा था। ओजोन परत के लुप्त होने या उसमें छेद होने से सूर्य की जीवनदायिनी किरणों में इतना बदलाव आ जाता है कि मनुष्यों में त्वचा कैंसर और मोतियाबिंदकी संभावना काफी बढ़ सकती है। अनेक अन्य जीवों पर भी प्रतिकूल असर पड़ता है। अधिकांश महत्त्वपूर्ण फसलों (जिन पर प्रयोग किए गए) के बारे में यही पता चला है कि ओजोन परत के लुप्त होने का उन पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। यहां तक कि समुद्रों की वनस्पति भी बुरी तरह प्रभावित होगी जिससे इन विशाल जल भंडारों का खाध चक्र और जीवन बुरी तरह प्रभावित हो सकता है।

प्रायः यह प्रांति फैली हुई है कि मॉन्ट्रियल समझौते और इसी कार्य को आगे बढ़ाने वाले अन्य अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों के फलस्वरूप यह समस्या सुलझ चुकी है। किन्तु हकीकत यह है कि सीएफसी व ओजोन परत को नुकसान पहुंचाने वाले अन्य रसायनों का उत्पादन और अवैध तस्करी बड़ी मात्रा में समझौते के बाद भी होता था। अंटार्कटिक क्षेत्र के ऊपर 12000 वर्ग मील तक बड़ा छेद ओजोन परत में देखा गया। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) के अनुसार ओजोन परत के कम होने के कारण प्रति वर्ष 3 लाख त्वचा कैंसर और 15 लाख मोतियाबिंद के अतिरिक्त केस आने की संभावना है। सत्तर वर्ष पहले सीएफसी के बारे में कोई नहीं जानता था। केवल सात दशकों में एक नये रसायन का इतनी तेजी से प्रसार हुआ और उसने इतनी तबाही मचाई कि सूर्य की किरणों को ही खतरनाक बनाने का विश्वव्यापी खतरा उत्पन्न कर दिया। इस अनुभव के बाद हमें कम से कम यह सवाल जरूर पूछना चाहिए कि जिन अन्य नये रसायनों को हम दुनिया में तेजी से फैलाते जा रहे हैं, क्या उनके स्वास्थ्य और पर्यावरण संबंधी असर के बारे में हम अपने को संतुष्ट कर चुके हैं? अनेक विशेषज्ञों ने कहा है कि इनमें से अधिकांश रसायनों के बारे में हमारी जानकारी अधूरी है, और विशेषकर अपने मिश्रित रूप में दो या दो से अधिक रसायन कितना नुकसान कर सकते हैं, यह जानकारी अपर्याप्त है। लिवरपूल विश्वविद्यालय से जुड़े विशेषज्ञ डॉ. वाईवन हॉवर्ड ने एक बहुचर्चित लेख में बताया है कि आज हमारे शरीर में 300 से 500 ऐसे रसायन मौजूद हैं, जिनका 50 वर्ष पहले अस्तित्व था ही नहीं या नहीं के बराबर था। खतरनाक रसायनों को जब मिश्रित किया जाता है, तो उनका खतरनाक असर 10 गुणा तक बढ़ सकता है जबकि वर्तमान जांच विभिन्न रसायनों की अलग-अलग ही की जाती है। अतः यदि सीएफसी वाली गलती नहीं दुहरानी है तो संकीर्ण आर्थिक स्वार्थों से ऊपर उठकर हमें विभिन्न रसायनों, उनके मिश्रणों के स्वास्थ्य और पर्यावरण असर का पता लगाना ही होगा और विश्व को खतरनाक रसायनों से बचाने के विशेष प्रयास करने होंगे।

संभवतः सबसे अधिक खतरा खाद्य चक्र को प्रभावित करने वाले खतरनाक रसायनों और नई तकनीकों से है। लंदन फूड कमीशन ने बताया था कि ब्रिटेन में 92 ऐसे कीटनाशकों/जंतुनाशकों को स्वीकृत मिली हुई है जिनके बारे में पशुओं पर होने वाले अध्ययनों से पता चला था कि इनसे कैंसर और जन्म के समय की विकृतियां होने की संभावना है। अमेरिका की नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज ने एक रिपोर्ट में कहा कि पेस्टीसाइड्स के कारण एक पीढ़ी में लगभग 10 लाख कैंसर के अतिरिक्त केस आने की संभावना है। विश्व स्तर पर औद्योगिक उपयोग में आने वाले रसायनों की संख्या तेजी से बढ़ती हुई एक लाख से ऊपर पहुंच चुकी है, पर इनसे जुड़े संभावित खतरों के बारे में अभी तक उपलब्ध जानकारी अधूरी है। इनवायर्मेंट प्रोटेक्शन एजेंसी (यूएसए) के पूर्व अध्यक्ष रसल ट्रेन ने चेतावनी भरे शब्दों में कहा है कि व्यावसायिक

उत्पादन में जो इतने नये रसायन आ रहे हैं, उनके बारे में हमें बहुत कम पता है, और हम भूल जाते हैं कि इस जानकारी का अभाव जानलेवा हो सकता है। ऐसी बुनियादी जानकारी के अभाव में गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं से बचाव संभव नहीं है। अध्ययनों के अनुसार खतरनाक केमिकल्स के कारण प्रतिकूल परिणाम झेलने वाले बच्चों की संख्या विश्वस्तर पर कई मिलियन में हो सकती है (1 मिलियन 10 लाख)। नैशनल इंस्टीच्यूट ऑफ ऑक्यूपेशनल हेल्थ (यूएसए) ने कुछ समय पहले बताया है कि कैंसर उत्पन्न करने वाले रसायनों से संपर्क में आने वाले मजदूरों की संख्या कई मिलियन में है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने बताया है कि कीटनाशकों और जन्तुनाशकों के छिड़काव से विश्व में प्रति वर्ष 25 मिलियन मजदूरों और किसानों का स्वास्थ्य क्षतिग्रस्त होता है।

हाल ही में 28 देशों के 174 वैज्ञानिकों ने आपसी सहयोग से एक अध्ययन ऐसे सामान्य उपयोग वाले रसायनों के बारे में किया गया जिनसे कैंसर की संभावना हो सकती है। 85 में से 50 केमिकल ऐसे पाए गए जिनकी कम डोज से कैंसर जैसे लक्षण जुड़े हुए थे। लंदन फूड कमीशन ने पता लगाया कि यूके में उपयोग होने वाले कीटनाशकों और जंतुनाशकों में जिन 426 मुख्य रसायनों का उपयोग हो रहा था, उनमें से 164 कैंसर, जन्म के समय की विकृतियों और स्वास्थ्य समस्याओं से जुड़े थे। अनेक खतरनाक रसायनों से होने वाली स्वास्थ्य की क्षति का आर्थिक आकलन भी कुछ अध्ययनों ने किया है। केवल एक देश (अमेरिका) में बच्चों पर सीसे के प्रतिकूल असर के बारे में अनुमान लगाया गया है कि यह क्षति एक साल में अरबों डॉलर की होती है। अनुमान इस आधार पर लगाया गया कि आगे चलकर बच्चों की उत्पादक क्षमता में कितनी कमी आएगी। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि बड़े स्तर पर उपयोग होने वाले केमिकल्स के स्वास्थ्य पर असर की ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करना और इस जानकारी के आधार पर समुचित कदम उठाना बहुत जरूरी है।